
प्रवचन-१९४, श्लोक-२७९, गाथा-१६४, रविवार, आषाढ शुक्ल १५, दिनांक २७-०७-१९८०

‘नियमसार’ २७९-कलश है। २७९ कलश।

आत्मा धर्मी भवति सुतरां ज्ञान-दृग्धर्म-युक्तः,
तस्मिन्नेव स्थितिमविचलां तां परिप्राप्य नित्यम्।
सम्यग्दृष्टिर्निखिल-करण-ग्राम-नीहार-भास्वान्,
मुक्तिं याति स्फुटितसहजावस्थया सन्स्थितां ताम् ॥२७९॥

श्लोकार्थ :- आहाहा! ज्ञानदर्शनधर्मों से युक्त... श्लोक का अर्थ। कैसा है यह भगवान आत्मा? ज्ञान-दर्शन, ऐसे जो इसके धर्म, उनसे सहित है - युक्त है। आहाहा! नाम अलग है। ज्ञान और दर्शन और आत्मा नाम अलग है, परन्तु ज्ञान जानन-देखन, इस धर्म से सहित आत्मा धर्मों है। लो, यह धर्मों की व्याख्या की। यह दया पाले, वह धर्मों और व्रत करे, (वह धर्मों), ऐसा नहीं कहा। जानन-देखन जो धर्म है, उस धर्मसहित, उससे युक्त सहित, वह धर्मों आत्मा। आहाहा! आत्मा की व्याख्या की।

वास्तव में धर्मों है। यह ज्ञानदर्शनधर्मों से युक्त होने के कारण आत्मा वास्तव में धर्मों है। आहाहा! आत्मा के अलावा किसी चीज़ के कारण उसमें उसे धर्म नहीं होता। उसे तो जानना-देखना दो धर्मसहित होने से, जानने-देखने की पर्याय हो, वह धर्म है। आहाहा! ज्ञान और दर्शन, वह त्रिकाली धर्म है। धर्मों ऐसा जो आत्मा, उसका दर्शन-ज्ञान - ऐसा धर्म त्रिकाली है। परन्तु उस दर्शन-ज्ञान का, पर्याय में दर्शन-ज्ञान का परिणमन करना, इसका नाम वर्तमान पर्याय धर्म है। आहाहा! यह सब झंझट... यह सब झंझट बाहर की है। भगवान तो ज्ञान और दर्शन सहित है। वह धर्मों स्वयं वस्तु ज्ञानधर्म, दर्शनधर्म सहित है। उसकी दृष्टि करने से, उसका स्वीकार करने से, जैसा वह धर्मों द्रव्य-गुण। गुणधर्म का धारक, वैसा वह पर्याय का धारक होता है। निर्मल पर्याय देखने-जानने की, स्वद्रव्य को देखने-जानने से होती है। उसे यहाँ धर्म कहते हैं। आहाहा!

सकल इन्द्रियसमूहरूपी हिम को... आहाहा! कैसा है भगवान ज्ञान और दर्शन? इन्द्रियसमूहरूपी हिम को (नष्ट करने के लिए)... जैसे सूर्य उगे और हिम का नाश हो, सूर्य उगे और हिम रहे नहीं। इसी तरह भगवान आत्मा, ज्ञान और दर्शन इसकी पर्याय में उगे तो अज्ञानरूपी हिम का नाश हो जाए। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान-दर्शन तो अभी है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शक्तिरूप है। माने, तब उसे है न! क्या कहा? है। परन्तु माने तो है न, नहीं माने तो उसे कहाँ है?

मुमुक्षु : ज्ञान-दर्शन तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। इसके लिये नहीं।

मुमुक्षु : यह ऐसा कहते हैं, पर्याय में ज्ञान-दर्शन प्रगट है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय में प्रगट है, परन्तु स्व के लक्ष्य से नहीं। पर के लक्ष्य से है। आहाहा!

यह प्रश्न हुआ था। नहीं? त्रिभुवनभाई वारिया ने प्रश्न किया था कि यह कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा आप कहते हो। इस देह में प्रभु कारणपरमात्मा बिराजता है। कारणपरमात्मा होवे तो कार्य तो आवे ही। कारण होवे तो कार्य आवे ही। यह प्रश्न किया था। त्रिभुवनवारिया, जामनगरवाला। कारणपरमात्मा है, इस देह में। प्रभु! कारणपरमात्मा सब है। आहाहा! यदि कारणपरमात्मा होवे तो कार्य आना चाहिए। कहा, तुम्हारी बात सत्य। परन्तु किसे? कारणपरमात्मा है, वह किसे? जिसे दृष्टि में आया है, उसे। दृष्टि में आया नहीं, उसे पर्याय लक्ष्य में है। कारणपरमात्मा लक्ष्य में है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। भाई! यह प्रश्न बहुत बार हो गया था। उसने कहा कि कारण है तो कार्य तो आना चाहिए। परन्तु कारण का स्वीकार करता है, ऐसा स्वीकार करे तो कार्य होता है या कारण है और स्वीकार भी नहीं और कार्य होगा? बाबूभाई! आहाहा!

अन्दर वस्तु है। वह कहीं बाह्य क्रियाकाण्ड से मिले, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! अभी यह सब प्रवृत्ति चल गयी है। अन्दर ज्ञान जानन-देखन, ऐसा जो धर्म का धारक धर्मी, उस धर्मी की दृष्टि करे तो... यह कहते हैं, देखो! **सकल इन्द्रियसमूह रूपी हिम को (नष्ट करने के लिए) सूर्य समान...** आहाहा! जैसे सूर्य उगे, और हिम नष्ट हो जाता है, वैसे यह भगवान ज्ञान-दर्शन... भाषा सादी है। बहुत अलंकार और विद्वताभरी नहीं है। सादी भाषा है। ज्ञान और दर्शन के धर्म से युक्त, ऐसा जिसने अनुभव किया, उसे जैसे सूर्य उगे और हिम नष्ट हो, वैसे जिसे ऐसा ज्ञान हो, वह सम्यग्दृष्टि होता है। इस मिथ्यादृष्टि, अनन्तानुबन्धी का नाश होता है। आहाहा!

लेख में आया है। विरधीचन्दजी कोई है। कोई सेठी-सेठी है। लेख आते हैं। ऐसा कहा कि पहले अनन्तानुबन्धी जाती है, पश्चात् मिथ्यात्व जाता है। अरे रे! यहाँ तो कहते हैं, मिथ्यात्व गया, तब ही अनन्तानुबन्धी गयी। अनन्तानुबन्धी, यह कषाय है। परन्तु उस कषाय का नाम अनन्तानुबन्धी क्यों पड़ा? - कि अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व। मिथ्यात्व को अनुसरती कषाय, इसलिए अनन्तानुबन्धी है। आहाहा! अर्थ करने में अन्तर डाले। पूरी

बात में अन्तर पड़ जाता है और अपना कक्का छोड़े नहीं। बाहर मनाया हो, लिखाया हो, उसमें (अन्तर करे नहीं)। आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञान और दर्शन, ऐसा जहाँ अन्दर सूर्य उगा... आहाहा! यह चैतन्य के नूर, उसके पूर बहे। उसके पूर बाहर पर्याय में बहे, (वहाँ) अज्ञानरूपी हिम का नाश हो जाता है। उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा! है? सूर्य समान ऐसा सम्यग्दृष्टि... वापस भाषा। सूर्य समान सम्यग्दृष्टि। आहाहा! जिसने इस आत्मा का ज्ञान और दर्शनस्वभाव अनुभव में लिया है, प्रतीति की है, वेदन हुआ है – ऐसा जो सम्यग्दृष्टिरूपी सूर्य, उसे यह अज्ञानरूपी जो हिम, उसका (इन्द्रियसमूहरूपी हिम का) नाश होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा तो अनन्त धर्म का अधिष्ठाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। वह अधिष्ठाता है न! उसमें कहाँ इनकार किया? यहाँ तो दर्शन-ज्ञान की बात चलती है। दर्शन स्व को देखे, ज्ञान पर को (जाने), यह बात चलती है न!

यहाँ तो दर्शन और ज्ञान दोनों अपने को जानते और देखते हैं। इसलिए वह दर्शन और ज्ञान का धारक जो आत्मा... ऐसा कहना है। पहले यह बात सिद्ध की न? दर्शन और ज्ञान नामभेद है, स्वभावभेद नहीं। जैसे ज्ञान स्व को प्रकाशित करता है, वैसे उसका दर्शन भी स्व को ही देखता है – ऐसा नहीं। स्व-परप्रकाशक है। अब कहते हैं, वह ज्ञान और दर्शन स्व-परप्रकाशक है; उनका धारक आत्मा, वह भी स्व-परप्रकाशक है। उसका जिसे अन्दर में अनुभव हुआ, उसका ज्ञान और उसका भान हुआ, वह सूर्य उगा। उसकी अज्ञानरूपी हिम नाश हो गयी और वह सम्यग्दृष्टि होता है। आहाहा! दूसरा कोई उपाय नहीं है, ऐसा नहीं कहा। पहले जानना आवे, जानपना आवे। परन्तु वस्तु ऐसी होवे। आहाहा! मार्ग कठिन, बापू! जन्म-मरण का अन्त लाना... आहाहा! वहाँ कहीं बाह्य की होशियारी काम नहीं करती। जानपने के करोड़ों श्लोक कण्ठस्थ हों तो वे कहीं वहाँ काम नहीं करते। आहाहा! वह तो मात्र वस्तु ज्ञान और दर्शन दोनों जब स्व-परप्रकाशक सिद्ध किये, तब उनका धारक भगवान भी स्व-परप्रकाशक हुआ। ऐसे स्व-परप्रकाशक आत्मा को... है न यह?

धर्मों से युक्त होने के कारण आत्मा वास्तव में धर्मी है। उस धर्मी की जिसे दृष्टि

हुई है। दर्शन और ज्ञान स्व-परप्रकाशक तो आत्मा भी स्व-परप्रकाशक। क्योंकि दर्शन और ज्ञान कहीं आत्मा से भिन्न नहीं है। ऐसी जिसकी दृष्टि हुई... आहाहा! वह **सकल इन्द्रियसमूहरूपी...** वह अनीन्द्रिय है। भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञान का धारक अनीन्द्रिय है और वह स्व-पर को प्रकाशित करता है, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, वहाँ **इन्द्रियसमूहरूपी हिम...** आहाहा! पाँचों ही इन्द्रियों की ओर की झुकाव की दशा कट हो गयी, भिन्न पड़ गयी। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है। इसके बिना जन्म-मरण का अन्त आनेवाला नहीं है। चौरासी के अवतार की बातों की अपेक्षा (बदले) इसका विचार करे तो उसे क्या हो? आहाहा! यह कहा नहीं था?

आचार्य महाराज कहते हैं कि मैं, जहाँ ये जन्म-मरण और अनन्त भव किये, उनका जहाँ विचार करता हूँ; आचार्य समकित्ती, अल्पकाल में मोक्ष जानेवाले। आहाहा! वे समकित्ती मुनि-आचार्य ऐसा कहते हैं। मैं ऐसे भूतकाल के दुःख के भव को जहाँ याद करता हूँ, वहाँ हृदय में घाव लगता है। आहाहा! भाई! बातों से बड़ा नहीं होता। उसके ख्याल में... आहाहा! ये नरक के दुःख, निगोद के दुःख... आहाहा! कहाँ चौरासी की योनि, कहाँ क्षेत्र, कहाँ भिन्न क्षेत्र, कहाँ आवास, कहाँ जन्म, कहाँ स्थान, कहाँ बेदरकारी हुई? और कुछ भी साधन बिना जन्म होकर वहाँ रहे। आहाहा! और उसमें दूसरे जीव मार डाले। ऐसे अनन्त बार कुचला गया है। मार डाला, ऐसे का ऐसा तोड़ डाला। आहाहा!

आचार्य कहते हैं कि मैं जहाँ भूतकाल के दुःख का विचार करता हूँ, ये नरक के दुःख एक अन्तर्मुहूर्त के, रत्नकरण्डश्रावकाचार में ऐसा कहते हैं, अरे रे! उन दुःखों का वर्णन प्रभु! करोड़ों भव और करोड़ों जीवों से नहीं कहा जा सकता। आहाहा! प्रभु! वह दुःख कैसा होगा? विचार भी कहाँ किया है? दरकार भी कहाँ की है? आहाहा! यहाँ कोई मनुष्य हुआ और कुछ पंचेन्द्रिय हुआ और कुछ सुविधा मिली, उसमें यह धुन में चढ़ गया। उस धुन में चढ़ गया। आहाहा! कितने दुःख अनन्त भवों में किस प्रकार के सिक गये हैं, जला डाला, टुकड़े किये, छेद डाला, टुकड़े किये, जीते जी अग्नि में जलाया, जीते जी पानी में डाला... आहाहा! दुश्मनों ने जीते जी दोनों नाक के छेद बन्द कर दिये, और मुँह बन्द कर दिया, श्वास बन्द हो गयी, उलझकर मर गया। आहाहा! यह तो दुःख

के प्रकार कहे। ऐसे-ऐसे दुःख के अनन्त प्रकार भोगे। भूल गया। वर्तमान मात्र यह सुविधा कुछ देखी, (उसमें) भूल गया।

कहते हैं कि प्रभु! तुझमें इतनी ताकत है। यह जानने-देखने के दो स्वभाव की हमने सिद्धि की, परन्तु उसका प्रयोजन / हेतु क्या? वह जानने-देखनेवाला जैसे दर्शन को भी कहा, ज्ञान को भी कहा तो उनका धारक आत्मा भी स्व-परप्रकाशक है। उसे जिसने पकड़ा... ऐसा कहते हैं। प्रयोजन तो यह है न? ऐसा जो स्व-परप्रकाशक भगवान आत्मा... आहाहा! उसे जिसने अन्दर पकड़ा और सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! वह सम्यग्दर्शनरूपी सूर्य, पाँच इन्द्रियाँ... आहाहा! पाँचों ही इन्द्रियों के विषय की ओर का रस छूट गया। एक अनीन्द्रिय ऐसा भगवान, जानने-देखनेवाला, एक गुण दोनों को जानने-देखनेवाला। दो प्रकार से जानने-देखनेवाला। एक ही जानना-देखना, ऐसा नहीं। प्रत्येक गुण यह ज्ञान-दर्शन, जानना-देखना, तो आत्मा भी जानने-देखनेवाला। ऐसे आत्मा की दृष्टि हुई, उसे अज्ञानरूपी हिम, जैसे सूर्य उगे और नाश हो, वैसे इन्द्रिय के समूह... आहाहा! पाँचों इन्द्रिय के समूह की विकल्प की दशा नाश हो जाती है। एकत्वबुद्धि नाश हो जाती है। आहाहा! कहाँ प्रभु अनीन्द्रिय और कहाँ पाँच इन्द्रिय के बाहर के झुकाववाली इन्द्रियों की दशा। अनीन्द्रिय भगवान की दशा अन्तर में... आहाहा! अनीन्द्रिय की दशा, उसकी दिशा आत्मा। इन्द्रिय की दशा, उसकी दशा पर के ऊपर। आहाहा!

प्रभु कहते हैं कि तू एकबार यह तो देख। तो यह इन्द्रियों का समूह जो ऐसा सब झुक गया है। दुःख का समय भोगा है। आहाहा! तू मानता है कि मैं सुखी हूँ। पैसा है, स्त्री है, भोग है, इज्जत है, और... बापू! प्रभु! तेरे दुःख कैसे हैं, तुझे खबर नहीं। यह कषाय है, कषाय है अर्थात् अन्दर अग्नि सुलगती है। परन्तु शान्त वस्तु के स्वभाव बिना कषाय की अग्नि को किसके साथ तुलना करे? आहाहा!

शान्तस्वरूप भगवान है। वह स्व-पर को प्रकाशित करता है। यह इन्द्रियों का समूह... आहाहा! समूह लिया, देखा! पाँचों इन्द्रियों की ओर का झुकाव। आहाहा! यह तो जड़-मिट्टी। अन्दर भाव इन्द्रिय का झुकाव भी बाहर। आहाहा! उसके इन्द्रिय के समूह में हिम की भाँति, सूर्य-समान ऐसा सम्यग्दृष्टि... आहाहा! शब्द थोड़े परन्तु भाव अन्दर

बहुत। आहाहा! निवृत्ति लेकर (विचार करे कि) मेरा क्या होगा? मैं अकेला यहाँ से चला जाऊँगा। यह सब पड़ा रहेगा। शरीर के रजकण साथ नहीं आयेंगे। आहाहा! मैं अकेला रहूँगा कहाँ? मेरी अस्तित्व की सत्ता तो नित्य है। उसे नित्य का कुछ अनित्य हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! ये तो सब नाशवान इन्द्रियों के समूह है। आहाहा! देह में आत्मा रहे तो आँखों से अन्धा हो जाए, कान से बहरा हो जाए, जीभ से बोल नहीं सके।

मुमुक्षु : पैर से चल नहीं सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैर से चल नहीं सकता, पैर उठा नहीं सकता। सर्वत्र है न! हमारे कुँवरजीभाई और आणंदजी दोनों। पैर उठाकर बैठाना पड़े। तूफान करते जब.. तूफान अर्थात् यह व्यापार। तूफान है न? आहाहा! व्यापार में तूफान करते तब मानो... आहाहा! दूसरे अपनी महत्ता और अपनी याददाश्त... याददाश्त-वाददाश्त ऐसा नहीं थी कुँवरजी की। आणंदजी की थी कुछ। परन्तु फिर भी पुण्य से पैसे इकट्ठे करे। दो-दो लाख रुपये वर्ष में उस दिन, हों! अभी तो दस लाख, चार लाख पैदा करे। आहाहा! धूल धाणी और वा पाणी। आहाहा!

बापू! मैंने कहा था। (संवत्) १९६४ के वर्ष में। भाई! यहाँ से कहाँ जाना है? बापू! यह पेढी और यह दुकान और यह माल। ऐसे पेढी पर (बैड़े तब) दिन में पाँच सौ-पाँच सौ की आमदनी हो। आहाहा! अरे! करोड़ों की हो तो इसकी चीज़ कहाँ है? वह तो इन्द्रियसमूह का विषय है। आहाहा! यह कहते हैं कि इन्द्रिय के समूह के विषय को, एक बार आत्मा के अतीन्द्रिय जानने-देखने के स्वभाव को पकड़कर जला दे। आहाहा! कहा न? दग्ध।

इन्द्रियसमूहरूपी हिम को (नष्ट करने के लिए) सूर्य समान ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव उसी में (ज्ञानदर्शनधर्मयुक्त आत्मा में ही)... आहाहा! धर्मी, जब उसे आत्मा ज्ञान-दर्शनयुक्त धर्मी अनुभव में आया। आहाहा! जैसे ये दूसरी चीज़ें इसे ज्ञान में तैरती है; वैसे ही जिसके ज्ञान और दर्शन में भगवान तैरता है, इसकी दृष्टि में वह तैरता है। उसी और उसी में जब रुकता है, तब कहते हैं... आहाहा! (ज्ञानदर्शनधर्मयुक्त आत्मा में ही) सदा अविचल स्थिति प्राप्त करके... आहाहा! ऐसे एक बार मिल गया, इसलिए नहीं, ऐसा कहते हैं। वहीं का वहीं अविचल स्थिति प्राप्त कर। वहाँ से हट नहीं जाए। आहाहा! अरे

रे! सुना न हो। सुना, परन्तु उसके भाव की मर्यादा क्या है, वह जानी न हो, इससे वह दुःख और सुख की व्याख्या नहीं जान सकता। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **सदा अविचल स्थिति प्राप्त करके...** सम्यग्दृष्टि जीव... आहाहा! ऐसे भगवान को दृष्टि में लेकर **सदा अविचल स्थिति...** एक ही बार देखा, देखा-जाना, ऐसा नहीं। बारम्बार उसमें स्थिर होकर सदा अविचल स्थिति, अकेले ज्ञान-दर्शन में स्थिर होना, एक धारावाही अन्दर अनुभव होना। अविचल-चलित नहीं ऐसी **स्थिति प्राप्त करके मुक्ति को प्राप्त होता है**— यह अकेली मुक्ति की प्राप्ति है। कोई क्रियाकाण्ड से मुक्ति की प्राप्ति नहीं है। आहाहा! क्योंकि उसका जो स्वभाव है, उसकी जो सत्ता का सत्व है, उस सत्व की खिलावट होकर पर्याय में सत्ता की खिलावट पूर्ण आवे, इसका नाम मुक्ति है। यह तो उस सत्ता के स्वभाव का साधक होता है और उसमें स्थिर होवे तो ही आवे। कोई राग करे, दया पाले, व्रत करे, भक्ति करे, (उसमें मुक्ति नहीं होती)। बहुत कठिन काम, भाई! आहाहा!

अन्दर में एकाग्र होकर सम्यग्दृष्टि जीव... यह कहा न? **मुक्ति को प्राप्त होता है—कि जो मुक्ति प्रगट हुई सहज दशारूप से...** कहते हैं, वह प्रगट जो दशा हुई, वह सहज दशारूप से (सदा) सुस्थित है। मुक्तदशा सदा सुस्थित है। सादि-अनन्त काल रहती है। आहाहा! यहाँ तो जरा समकित में या उसमें घड़ीक में जाए और फिर भी जाए। यह दशा जहाँ पूर्ण प्रगट की, सदा सुस्थित अन्तर आनन्द में सद्भाव जो आनन्द था, उस आनन्द के धारक स्व-परप्रकाशक प्रभु की अन्दर भेंट हुई... आहाहा! अविचलरूप से रहा। उसे मुक्ति हुई। वह मुक्ति सुस्थित सदा रहेगी। आहाहा!

यह संयोग कितने काल! यह तो कुछ २५-५० वर्ष की गिनती क्या? आहाहा! अनन्त काल के हिसाब से २५-५० वर्ष की गिनती एक सैकेण्ड जितनी भी नहीं है। आहाहा! यह लोकालोक, अलोक के हिसाब से लोक एक रजकण जितना। आहाहा! चारों ओर अलोक, उसका पार नहीं। उसमें चौदह ब्रह्माण्ड। अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद.. आहाहा! अनन्त वीर पुरुषार्थ करके परमात्मपद को प्राप्त हुए। वह सब रहने का स्थान कितना? अलोक के हिसाब से तो रजकण जितना। एक रजकण जितना। आहाहा! ऐसे अनन्त काल में अनादि-अनन्त आत्मा की स्थिति, उसमें रहने का काल कितना? यहाँ तो

एक समय। एक समय में क्या होगा? दूसरे समय क्या होगा? इसका कुछ इसे भरोसा और खबर नहीं होती। आहाहा! तुझे किसका सन्तोष होता है? ऐसा कहते हैं। है न?

प्रगट हुई सहज दशारूप से सुस्थित है। यह जो मुक्तदशा प्रगट हुई, वह सहजदशा सहज है, वह और इसलिए उस दशारूप सुस्थित है। आहाहा! 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में।' - श्रीमद् में आता है न? 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो, अनन्त दर्शन-ज्ञान अनन्त सहित जो, अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?' सम्यग्दृष्टि भावना करता है। 'अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?' यह सब विद्यमान (चीज) दिखायी दे, उसे अविद्यमान करके और जिसे अनादि से अविद्यमान किया है, उसे विद्यमान बना। आहाहा! तो तेरी विद्यमान मुक्ति होगी। आहाहा! अरे! यहाँ तो जरा पाँच-पचास लाख जहाँ पैसे (रुपये) हों, वहाँ आकाश में... क्या कहलाता है? क्या कहलाता है वह? लात... लात। आकाश में लात मारे।

मुमुक्षु : स्वयं गिरे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह जूते ऐसे पहिने, वस्त्र ऐसे पहिने। ऐसे मानो... आहाहा! क्या है? प्रभु! तेरे दुःख की बातें भगवान कहते हैं, एक क्षण के दुःखों को करोड़ भवों में, करोड़ जीवों से नहीं कहा जा सकता, नाथ! तूने अनन्त बार भोगे हैं। तू भूल गया है। यहाँ आया और जहाँ स्त्री-पुत्र हुए, (वहाँ) भूल गया। आहाहा! यह स्थिति। मुक्ति प्रगटे, वह दशा सहज है। देखो! भाषा! स्वाभाविक है।

इसलिए सहज दशारूप से सुस्थित है। इसलिए वह सहजदशारूप से सुस्थित है। मुक्ति सुस्थित। आहाहा! धन्य अवतार! धन्य काल! अपूर्व अवसर यह। गाथा में तो बहुत समाहित किया है। आचार्यों के हृदय में गाथायें बनाने में गम्भीरता बहुत है। दिगम्बर आचार्य अर्थात् परमेश्वर। यह तो पहले आया नहीं? - कि परमेश्वर और मुनि में अन्तर मानें, हम जड़ हैं। आहाहा! वे जंगल में अकेले नग्न (रहे), वस्त्र का टुकड़ा नहीं, पात्र नहीं। आहाहा! इस जंगल में अकेले बाघ और भालू की त्राड़ पड़ती हो... आहाहा! उसमें शान्त... शान्त... स्थिर हैं। ऐसी दशा, उसे सहज मुक्तदशा हो जाती है।

गाथा-१६४

णाणं परप्पयासं व्यवहारणयेण दंसणं तम्हा ।
 अप्पा परप्पयासो व्यवहारणयेण दंसणं तम्हा ॥१६४॥
 ज्ञानं परप्रकाशं व्यवहारनयेन दर्शनं तस्मात् ।
 आत्मा परप्रकाशो व्यवहारनयेन दर्शनं तस्मात् ॥१६४॥

व्यवहारनयस्य सफलत्वप्रद्योतनकथनमाह । इह सकलकर्मक्षयप्रादुर्भावसादितसकल-
 विमलकेवलज्ञानस्य पुद्गलादिमूर्तामूर्तचेतनाचेतनपरद्रव्यगुणपर्यायप्रकरप्रकाशकत्वं कथ-मिति
 चेत्, पराश्रितो व्यवहारः इति वचनात् व्यवहारनयबलेनेति । ततो दर्शनमपि तादृशमेव ।
 त्रैलोक्यप्रक्षोभहेतुभूततीर्थकरपरमदेवस्य शतमखशतप्रत्यक्षवन्दनायोग्यस्य कार्यपरमात्मनश्च तद्देव
 परप्रकाशकत्वम् । तेन व्यवहारनयबलेन च तस्य खलु भगवतः केवलदर्शनमपि तादृशमेवेति ।

तथा चोक्तं श्रुतबिन्दौ -

(मालिनी)

जयति विजितदोषोऽमर्त्यमर्त्येन्द्रमौलि-
 प्रविलसदुरुमालाभ्यर्चिताङ्घ्रिर्जिनेन्द्रः ।
 त्रिजग-दजगती यस्येदृशौ व्यश्नुवाते,
 सममिव विषयेष्वन्योन्य-वृत्तिं निषेद्धुम् ॥

व्यवहार से है ज्ञान परगत दर्श भी अतएव है ।

व्यवहार से है जीव परगत दर्श भी अतएव है ॥१६४॥

अन्वयार्थः — [व्यवहारनयेन] व्यवहारनय से [ज्ञानं] ज्ञान [परप्रकाशं]
 परप्रकाशक है; [तस्मात्] इसलिए [दर्शनम्] दर्शन परप्रकाशक है । [व्यवहारनयेन]

व्यवहारनय से [आत्मा] आत्मा [परप्रकाशः] परप्रकाशक है; [तस्मात्] इसलिए [दर्शनम्] दर्शन परप्रकाशक है।

टीका:—यह, व्यवहारनय की सफलता दर्शानेवाला कथन है।

समस्त (ज्ञानावरणीय) कर्म का क्षय होने से प्राप्त होनेवाला सकल-विमल केवलज्ञान पुद्गलादि मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन परद्रव्यगुणपर्यायसमूह का प्रकाशक किस प्रकार है—ऐसा यहाँ प्रश्न हो, तो उसका उत्तर यह है कि—‘पराश्रितो व्यवहारः (व्यवहार पराश्रित है)’ ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से व्यवहारनय के बल से ऐसा है (अर्थात् परप्रकाशक है); इसलिए दर्शन भी वैसा ही (-व्यवहारनय के बल से परप्रकाशक) है। और तीन लोक के *प्रक्षोभ के हेतुभूत तीर्थकर-परमदेव को—कि जो सौ इन्द्रों की प्रत्यक्ष वन्दना के योग्य हैं और कार्यपरमात्मा हैं उन्हें—ज्ञान की भाँति ही (व्यवहारनय के बल से) परप्रकाशकपना है; इसलिए व्यवहारनय के बल से उन भगवान का केवलदर्शन भी वैसा ही है।

इसी प्रकार श्रुतबिन्दु में (श्लोक द्वारा) कहा है कि :—

(वीरछन्द)

इन्द्र नरेन्द्रों के मुकुटों की भासवान मालाओं से।
जिनके चरणकमल पूजित हैं, सकल दोष जिनने जीते ॥
एक-दूसरे में प्रविष्ट नहीं होते ऐसे सकल पदार्थ।
युगपत् जिनमें व्याप्त हुए हैं वे जिननाथ सदा जयवन्त ॥

[श्लोकार्थः—] जिन्होंने दोषों को जीता है, जिनके चरण देवेन्द्रों तथा नरेन्द्रों के मुकुटों में प्रकाशमान मूल्यवान मालाओं से पुजते हैं (अर्थात् जिनके चरणों में इन्द्र तथा चक्रवर्तियों के मणिमालायुक्त मुकुटवाले मस्तक अत्यन्त झुकते हैं), और (लोकालोक के समस्त) पदार्थ एक-दूसरे में प्रवेश को प्राप्त न हों इस प्रकार तीन लोक और अलोक जिनमें एक साथ ही व्याप्त हैं (अर्थात् जो जिनेन्द्र को युगपत् ज्ञात होते हैं), वे जिनेन्द्र जयवन्त हैं।

* प्रक्षोभ = खलबली। (तीर्थकर के जन्मकल्याणकादि प्रसंगों पर तीन लोक में आनन्दमय खलबली होती है।)

गाथा - १६४ पर प्रवचन

१६४।१६४।

णाणं परप्पयासं ववहारणयेण दंसणं तम्हा ।

अप्पा परप्पयासो ववहारणयेण दंसणं तम्हा ॥१६४॥

व्यवहार से है ज्ञान पर-गत दर्श भी अतएव है ।

व्यवहार से है जीव पर-गत दर्श भी अतएव है ॥१६४॥

व्यवहार से कहा जाता है, कहते हैं । यह, व्यवहारनय की सफलता दर्शानेवाला कथन है । समस्त (ज्ञानावरणीय) कर्म का क्षय होने से प्राप्त होनेवाला सकल-विमल केवलज्ञान पुद्गलादि मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन परद्रव्यगुणपर्यायसमूह का... परद्रव्यगुणपर्यायसमूह का प्रकाशक किस प्रकार है—ऐसा यहाँ प्रश्न हो, तो... आहाहा ! व्यवहार सिद्ध करते हैं । ऐसा कि स्वयं प्रकाशता है यहाँ और ज्ञात होते हैं यह ! यह क्या ? यह क्या ख्याल में लिया है ? - ऐसा कहते हैं । ज्ञात हो यहाँ । यह और सब ज्ञात हो इसमें । और वह वस्तु ऐसे दूर रहे । यह किस प्रकार होता है ? यह विचार ही कहाँ किया है ? ऐसा कहते हैं । आहाहा !

देखो, क्या कहा ? (ज्ञानावरणीय) कर्म का क्षय होने से प्राप्त होनेवाला सकल-विमल केवलज्ञान पुद्गलादि मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन परद्रव्यगुणपर्यायसमूह का प्रकाशक... परद्रव्य, हों ! इसमें यहाँ स्वद्रव्य नहीं लिया । यहाँ व्यवहारनय लेना है न ? व्यवहार से परद्रव्यगुणपर्याय के समूह को जानता है । क्योंकि उनमें तन्मय हुए बिना जानता है, इसलिए व्यवहार । आहाहा ! जिसे जानना, उसमें तन्मय होकर जाने, एकमेक होकर जाने, उसे निश्चय कहते हैं और जिसे जाने, उसे स्पर्श न करे... आहाहा ! उसमें तन्मय नहीं हो और जाने, ऐसा कहना, वह व्यवहार है । परन्तु वह व्यवहार इस प्रकार होता है, ऐसा कहते हैं । व्यवहार से व्यवहार होता है । आहाहा ! व्यवहार से पर को ही, द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने और स्व को न जाने, इससे व्यवहारनय खोटा नहीं है । पर को, हों ! स्व के अतिरिक्त । और एक ओर कहना कि व्यवहार, वह पराश्रित है । तब उसका अर्थ क्या अब ? ऐसा कहते हैं ।

‘पराश्रितो व्यवहारः (व्यवहार पराश्रित है)’ ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से व्यवहारनय के बल से ऐसा है (अर्थात् परप्रकाशक है);... आहाहा! पर को जानता है, इतना ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है, इतना व्यवहार है। भले आदरणीय आश्रय करनेयोग्य नहीं है, परन्तु ‘है’, यह बात यहाँ सिद्ध की है। व्यवहारनय है। जिसे जाने, उससे स्वयं भिन्न रहे; उसे जाने, उसमें तन्मय न होने पर भी उसे जाने, यह व्यवहारनय से कहा जा सकता है। यह व्यवहारनय का बल - ऐसा कह सकते हैं, ऐसा कहते हैं। कहा न? ‘पराश्रितो व्यवहारः (व्यवहार पराश्रित है)’ ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से व्यवहारनय के बल से... आया न? आहाहा! ऐसा आवे, तब लोगों को ऐसा हो जाता है कि देखो! व्यवहार का बल लिया न? इसलिए व्यवहारनय के बल से भी निश्चय होता है। यह बात यहाँ कहाँ है? (निश्चय) होने की बात यहाँ कहाँ है? यह तो आत्मा अपने में रहकर, अपना क्षेत्र छोड़े बिना, पर के क्षेत्र में गये बिना पर को जाने, वह क्या कहा जाए उसे? वह व्यवहारनय का बल कहा जाता है। आहाहा! ऐसे कहाँ निवृत्त बैठे? आहाहा!

प्रभु यहाँ है और कहते हैं कि दूर इसके पास स्पर्श भी नहीं किया। इसका क्षेत्र नहीं, इसका काल नहीं, इसका भाव भी नहीं। उसका काल, द्रव्य, भाव उसमें है। इससे अत्यन्त भिन्न अन्य भाव है। उसे आत्मा को जाने, वह आत्मा इसे जाने। यह व्यवहारनय के बल से, ऐसा कहा जा सकता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार खोटा है, भगवान को व्यवहार से जाने...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार खोटा है। वह खोटा है तो निश्चय की अपेक्षा से। परन्तु व्यवहार और व्यवहार का विषय नहीं ही, ऐसा नहीं है। यह नय है, वह तो विषयी है। और यह विषयी है, उसका विषय होता है ही। नय विषयी है। उसका विषय न होवे तो विषयी ही नहीं होगा। व्यवहारनय है। आहाहा!

पहले आ गया है, कथनमात्ररूप से। व्यवहार कथनमात्र है, परन्तु इससे व्यवहार से लाभ होगा और व्यवहार से आत्मलाभ हो, वहाँ नहीं ले जाना, प्रभु! मात्र हम तो व्यवहार अर्थात् पराश्रित है, इतना स्थापित करने को हम व्यवहारनय कहते हैं। आहाहा! इसी तरह व्यवहाररत्नत्रय है, वह जानने के लिये है - ऐसा कहते हैं, परन्तु इसका अर्थ तो उससे आत्मा को लाभ हो जाए, ऐसा अर्थ करना नहीं। आहाहा! है? क्या कहा यहाँ?

व्यवहारनय के बल से ऐसा है... परप्रकाशक इस कारण से कहा। जानता है तो स्वयं अपने को परन्तु तो भी उसे जानता है - ऐसा कहा, वह व्यवहार प्रकाशक है। वह व्यवहार परप्रकाशक है। आहाहा! जिसे स्पर्श भी नहीं करता, जिसमें आत्मा जाता भी नहीं, जिसमें वह चीज़ आती नहीं, तो भी उसे जानता है - ऐसा कहना, वह व्यवहारनय है। व्यवहारनय है - ऐसा सिद्ध करना है, परन्तु इससे व्यवहारनय से लाभ होता है, ऐसा अर्थ निकाले - ऐसा (आशय) यहाँ नहीं है। आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका में ऐसा बहुत है। समयसार की जयसेनाचार्य की टीका। व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है, ऐसे कथन बहुत (आते हैं)। इसलिए उन ज्ञानसागर ने ऐसा अर्थ किया न? और विद्यासागर ने उसे मान्य रखा। क्योंकि व्यवहार साधन आवे न! परन्तु वह तो साधन तो आरोप से कथन है।

आत्मा राग से भिन्न पड़कर अपनी सत्ता की सँभाल करके, जहाँ अनुभव हुआ, तब जो यहाँ साधन का राग था, वह निश्चय साधन था, तब उसे व्यवहार साधन का आरोप दिया। निश्चय नहीं, उसे व्यवहार का आरोप है, ऐसा नहीं है। जिसे निश्चय नहीं है, उसके व्यवहार नहीं कहा जाता। आहाहा! इसमें तकरार, बड़ी तकरार। वह दर्शन... आता है जैनदर्शन (तत्कालीन पत्रिका)। प्रभु! प्रभु! हित के मार्ग में प्रभु! तुझे ठीक न पड़े। जानने के लिये व्यवहार है - ऐसा कहा जाता है। दूसरी चीज़ है। एक जानता है, क्योंकि जाननेवाला जानता है न? जाननेवाला पर को जानता है न? इतनी अपेक्षा से व्यवहारनय के बल से पर को जानता है - ऐसा कहा जाता है। इससे कहीं ज्ञान पर में तन्मय हो जाता है? जिसे जाने, उसमें ज्ञान तन्मय हो जाता है - ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसा उपदेश! वह तो दया पालने की बातें, व्रत करना, प्रत्याख्यान करना, संथारा करना... आहाहा! ऐसी बातें लोगों को मीठी लगे और बेचारे जुड़ जाएँ। संथारा किया था। बहुत सुना है न! हमारे थे न, बोटोद में? नहीं? धंधुका के पास रोचका। रोचका के थे न? उनका क्या नाम? दो भाई थे। हमारे निकट आजीवन ब्रह्मचर्य लिया। स्त्री मर गयी। फिर अन्त में संथारा किया। दृष्टि मिथ्यात्व। संथारा किया और फिर रेकड़ी में निकाला। लोग कहे... आहाहा! अहमदाबाद के अहमदाबाद। अरे, भाई! संथारा किसे कहते हैं? प्रभु! आहाहा!

अभी देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं बापू! बापू! हित की बात है,

इसमें दुःख नहीं लगाना चाहिए। हमें खोटा कहते हैं – ऐसे दुःख नहीं लगाना, भाई! तुझे भी कैसे हित हो? तुझे दुःख न हो, भाई! यह बात है यहाँ। किसी प्राणी को जरा भी दुःख न हो। सब भगवान होओ। पूर्णानन्द को प्राप्त होओ, प्रभु! आहाहा! ऐसी भावना आती है न? तीन-चार जगह (आती है)। सब भगवान होओ। भगवान हो, प्रभु! तुझे यह बात जँचती नहीं। अन्दर भगवान परमात्मा शक्तिस्वभाव से, सत्व से... आहाहा! वह है, वैसा हो जा, प्रभु! नहीं है, उसमें रहना, वह तुझे ठीक नहीं पड़ता प्रभु! आहाहा!

व्यवहार नहीं है – ऐसा नहीं है। यह जो था, हुआ, वह व्यवहार कहो। बाकी तो है, वह है। आहाहा! क्योंकि पर्यायमात्र व्यवहार है। द्रव्य है, वह त्रिकाली वस्तु है, वह वस्तु है। आहाहा! एकरूप त्रिकाल रहनेवाला नित्यानन्द नित्यदल आत्मा; उसमें सिद्ध पर्याय, केवलज्ञान, वह व्यवहार। आहाहा! भेद पड़ा न! पर्याय का भेद पड़ा न!

पंचाध्यायी में तो यह लिया है – द्रव्य अर्थात् निश्चय है; पर्यायमात्र व्यवहार है। मोक्ष और केवलज्ञान, वह व्यवहार है। आहाहा! उसका भेद है न? द्रव्य का भेद है न? इसलिए व्यवहारनय का विषय है। आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! व्यवहारनय ही नहीं है – ऐसा नहीं है। व्यवहारनय की चीज़ सामने है। पर, पर जाने, वह पर नहीं और पर को जाने तो बिल्कुल व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा! परन्तु पर में तन्मय नहीं होता और पर में तन्मय होवे, तब तो दुःखी हो जाए। आहाहा!

तू तुझमें रह, प्रभु! तुझमें क्या कमी है? आहाहा! उसमें आया था, 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा। प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, पर की आश कहाँ करे प्रीतम, पर की आश कहाँ करे प्रीतम...' आहाहा! 'किस बात से तू अधूरा?' कैसे तू है अधूरा? 'प्रभु मेरे सब बातें पूरा।' सब बात से पूरा है। किसी बात से उसे आश्रय पर को ले तो उसे लाभ हो, ऐसी वस्तु है नहीं। वह कहीं आश्रय लेने के लिए लाभदायक है नहीं। मात्र जानता है, इतना सिद्ध करने को, पर है, तो भी जानता है। वास्तव में तो उस ज्ञान को ज्ञान जानता है। पर को जाननेवाला ज्ञान, वह ज्ञान ज्ञान को जानता है। आहाहा! परन्तु वह ज्ञान पर को जानता है, इतना भी व्यवहार है। आहाहा! उसका निषेध नहीं और वह व्यवहार है; इसलिए व्यवहार से निश्चय होता है, यह इसमें लागू नहीं पड़ता।

यह यहाँ कहते हैं व्यवहारनय के बल से ऐसा है (अर्थात् परप्रकाशक है);...

व्यवहारनय केवल से। अन्दर है न? इसलिए दर्शन भी वैसा ही... है। तो दर्शन भी वैसा ही है। कैसा? पर को प्रकाशे। दर्शन भी पर को प्रकाशित करता है। जब आत्मा परप्रकाशक है तो उसका दर्शनगुण भी परप्रकाशक है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें। लोहा काटे छैनी, ऐसा कहते हैं। बारीक छैनी हो, वह लोहे को काटती है। कहीं हथौड़ा काटता होगा? आहाहा! ऐसी प्रभु की बात इसे सूक्ष्म लगती है। यहाँ शब्द-शब्द में भाव में अन्तर और भाव की महिमा है। यह भगवान जब व्यवहार से पराश्रित है - ऐसा शास्त्र का वचन होने से व्यवहारनय के बल से परप्रकाशक है; इसलिए दर्शन भी ऐसा है। दर्शन को भी परप्रकाशक कहने में आपत्ति नहीं है। आहाहा!

(-व्यवहारनय के बल से (दर्शन भी) परप्रकाशक) है। और तीन लोक के प्रक्षोभ के हेतुभूत... आहाहा! तीन लोक के प्रक्षोभ के हेतुभूत तीर्थकर-परमदेव को — कि जो सौ इन्द्रों की प्रत्यक्ष वन्दना के योग्य हैं... आहाहा! जो सौ इन्द्रों को-परदेव आदि सौ इन्द्रों को प्रत्यक्ष वन्दना के योग्य है। सिद्ध है, वे परोक्ष वन्दना के योग्य है। यह क्या कहा? सिद्ध को वन्दन है, वे तो परोक्ष है; दिखते नहीं। यह तो भगवान प्रत्यक्ष दिखते हैं, प्रत्यक्ष दर्शन है। आहाहा! तीन लोक के प्रक्षोभ के हेतुभूत तीर्थकर-परमदेव को — कि जो सौ इन्द्रों की प्रत्यक्ष वन्दना के योग्य हैं और कार्यपरमात्मा हैं... वे कार्यपरमात्मा हैं।

परमात्मा त्रिकाली कारणपरमात्मा है, उसमें ध्यान करने से पर्याय में कार्यपरमात्मा होते हैं। उन्हें—ज्ञान की भाँति ही (व्यवहारनय के बल से) परप्रकाशकपना है;... किसे? कार्यपरमात्मा को। आहाहा! कार्यपरमात्मा अर्थात् सिद्ध हुए, सिद्ध। केवलज्ञानी हो गये, अरिहन्त हो गये, उन्हें भी परप्रकाशक कहा जाता है। आहाहा! अब इसमें व्यवहार में कितना वजन देना और किसलिए देना? इसकी गड़बड़ करते हैं। अर्थात् एक दूसरी चीज़ है और ज्ञान में स्व-परप्रकाशक जानने की सामर्थ्य है, इससे ज्ञान पर को जानता है - ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। पर को जानते हुए पर में तन्मय होकर जानता है, तब तो नारकी को देखते हुए भगवान दुःखी हो जाएँ। आहाहा! सातवें नरक के दुःख देखने पर स्वयं दुःखी हो जाएँ (यदि) आत्मा तन्मय होकर (जाने तो)। वह तो दूर रहकर अपनी सामर्थ्य से उसे देखते हैं, इतनी बात व्यवहार से कहने योग्य है। आहाहा!

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)